[2018] 3 उम. नि. प. 234

सुनील सामदरिया

बनाम

भारत संघ मार्फत सचिव, विधि और न्याय मंत्रालय और अन्य

23 फरवरी, 2018

न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी और न्यायमूर्ति अशोक भूषण

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 217(2)(क) और 224 – उच्च न्यायालय में अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति – अर्हता – अनुच्छेद 217(2)(क) में यह उपबंधित है कि अपर न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति के लिए अभ्यर्थी द्वारा कम से कम 10 वर्ष तक न्यायिक पद 'धारण किया गया हो', से यह उपदर्शित नहीं होता है कि अभ्यर्थी दस वर्ष से कोई न्यायिक पद धारण करने के अतिरिक्त अनुच्छेद 224 के अधीन नियुक्ति की अधिसूचना जारी होने के समय भी न्यायिक पद धारण कर रहा हो ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 224 – उच्च न्यायालय में अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति – पदावधि – दो वर्ष से कम अवधि के लिए नियुक्ति – जब अपर न्यायाधीश के रूप में नियुक्त व्यक्ति दो वर्ष की पदावधि से पूर्व 62 वर्ष की अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर लेने के पश्चात् सेवानिवृत्त हो रहा हो, तो ऐसी नियुक्ति को अनुच्छेद 224 के प्रतिकूल नहीं कहा जा सकता है ।

इस रिट याचिका के तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 की राजस्थान उच्च न्यायालय के अपर न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति करते हुए तारीख 12 मई, 2017 को एक अधिसूचना जारी की गई थी । प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 राजस्थान राज्य की न्यायिक सेवा के सदस्य थे, जो 60 वर्ष की अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने के पश्चात् जिला न्यायाधीश के पद से क्रमशः तारीख 30 सितंबर, 2016 और 31 जुलाई, 2016 को सेवानिवृत्त हुए थे । याची, जो राजस्थान उच्च न्यायालय में एक व्यवसायरत अधिवक्ता है, द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 की नियुक्ति को इस आधार पर चुनौती देते हुए कि जिस दिन अर्थात् 12 मई, 2017 को अधिसूचना जारी की गई थी, दोनों व्यक्ति न्यायिक पद

धारण नहीं करने के कारण उच्च न्यायालय के अपर न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र नहीं थे और प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 की नियुक्ति दो वर्ष की अवधि से कम होने के कारण भारत के संविधान के अनुच्छेद 224 के विपरीत है, उच्चतम न्यायालय में रिट याचिका फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – संविधान के अनुच्छेद 217(2)(क) में यथा प्रयुक्त शब्द "धारण कर चुका है" से यह उपदर्शित होता है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए जो विहित अर्हता है वह यह है कि ऐसा व्यक्ति भारत के राज्यक्षेत्र में कम से कम दस वर्ष कोई न्यायिक पद धारण कर चुका हो । उपरोक्त खंड में 'धारण कर चुका है' शब्द के प्रयोग से यह उपदर्शित नहीं होता है कि इस अर्हता का यह भी अर्थ है कि दस वर्ष कोई न्यायिक पद धारण करने के अतिरिक्त पदधारी अनुच्छेद 224 के अधीन सूचना जारी होने के समय भी न्यायिक पद धारण कर रहा हो । उपरोक्त निष्कर्ष का समर्थन अनुच्छेद 217(2) के स्पष्टीकरण (क) और (कक) से भी होता है । स्पष्टीकरण (क) में यह उपबंधित है कि भारत के राज्यक्षेत्र में न्यायिक पद धारण करने की अवधि की संगणना करने में वह अवधि भी सम्मिलित की जाएगी जिसके दौरान कोई व्यक्ति न्यायिक पद धारण करने के पश्चात् किसी उच्च न्यायालय का अधिवक्ता रहा है या उसने किसी अधिकरण के सदस्य का पद धारण किया है अथवा संघ या राज्य के अधीन कोई ऐसा पद धारण किया है जिसके लिए विधि का विशेष ज्ञान अपेक्षित है । अनुच्छेद 217(2)(क) में यथा उपबंधित पात्रता के पठन मात्र से यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 राजस्थान उच्च न्यायालय के अपर न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति के लिए अपात्र नहीं हैं । (पैरा 24, 25 और 26)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1993]	(1993) 4 एस. सी. सी. 441 : **सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स-आन रिकार्ड एसोसिएशन और अन्य** बनाम **भारत संघ** ;	28
[1992]	[1992] 2 उम. नि. प. 414 = (1992) 2 एस. सी. सी. 428 : **श्री कुमार पदम प्रसाद** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	3,4

[1982] [1982] 4 उम. नि. प. 1 =
(1981) सप्ली. एस. सी. सी. 87 :
एस. पी. गुप्त बनाम **भारत संघ और एक अन्य** ; 3,4

[1966] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 1987 :
चंद्र मोहन बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** । 17

आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 2017 की रिट याचिका (सिविल) सं. 835.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 131 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री सुनील सामदरिया (याची-व्यक्तिगत रूप से)

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री मनिंदर सिंह, अपर महा-सालिसिटर, सुश्री माधवी दीवान, आर. बालसुब्रमण्यन, प्रभास बजाज, अक्षय अमरियांशु, (सुश्री) आरती शर्मा और मुकेश कुमार मरोड़िया

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अशोक भूषण ने दिया ।

न्या. भूषण – भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन यह रिट याचिका याची, जो राजस्थान उच्च न्यायालय में एक व्यवसायरत अधिवक्ता है, द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 की राजस्थान उच्च न्यायालय के अपर न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति करते हुए जारी की गई तारीख 12 मई, 2017 की अधिसूचना को प्रश्नगत करते हुए फाइल की गई है । इस न्यायालय ने तारीख 3 अक्तूबर, 2017 को केवल प्रत्यर्थी सं. 1 को नोटिस जारी किया था । भारत संघ-प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा एक प्रति-शपथपत्र फाइल किया गया है ।

2. हमने याची, जो व्यक्तिगत रूप से हाजिर हुए और भारत के विद्वान् अपर महा-सालिसिटर, श्री मनिंदर सिंह को सुना ।

3. व्यक्तिगत रूप से हाजिर याची ने प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 की राजस्थान उच्च न्यायालय के अपर न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति को चुनौती देते हुए निम्नलिखित दो दलीलें दी हैं : –

(1) राजस्थान उच्च न्यायालय के अपर न्यायाधीशों के रूप में प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 की नियुक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 224 के अधीन की गई है । प्रत्यर्थी सं. 2 की नियुक्ति तारीख 1 सितंबर, 2018, जबकि प्रत्यर्थी सं. 3 की नियुक्ति तारीख 2 जुलाई, 2018 तक के लिए की गई है और दोनों नियुक्तियां दो वर्ष से कम अवधि के लिए होने के कारण भारत के संविधान के अनुच्छेद 224 का अतिक्रमण होता है । यह दलील दी गई कि अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति दो वर्ष से कम अवधि के लिए नहीं की जानी चाहिए थी, इसलिए नियुक्तियां नास्ति और शून्य हैं । **एस. पी. गुप्त** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय का अवलंब लिया गया ।

(2) प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 राजस्थान राज्य की न्यायिक सेवा के सदस्य थे, जो 60 वर्ष की अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने के पश्चात् क्रमशः तारीख 30 सितंबर, 2016 और 31 जुलाई, 2016 को जिला न्यायाधीश के पद से सेवानिवृत्त हुए थे । प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 की नियुक्ति करते हुए जिस दिन अर्थात् 12 मई, 2017 को जब अधिसूचना जारी की गई थी, दोनों द्वारा न्यायिक पद धारण नहीं करने के कारण वे उच्च न्यायालय के अपर न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र नहीं थे । किसी व्यक्ति को उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए अनुच्छेद 217(2) के अधीन यथा उपबंधित पात्रता यह है कि (क) वह राज्य की न्यायिक सेवा का सदस्य होना चाहिए । प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 न्यायिक सेवा से काफी पहले सेवानिवृत्त होने के कारण उच्च न्यायालय के अपर न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति के लिए पात्रता नहीं रखते हैं, इसलिए इस आधार पर भी प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 की नियुक्तियों को नास्ति और शून्य घोषित किया जाना चाहिए । याची ने **श्री कुमार पदम प्रसाद** बनाम **भारत संघ और अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया है ।

4. भारत के विद्वान् अपर महा-सालिसिटर, श्री मनिंदर सिंह ने याची

---

[1] [1982] 4 उम. नि. प. 1 = (1981) सप्ली. एस. सी. सी. 87.

[2] [1992] 2 उम. नि. प. 414 = (1992) 2 एस. सी. सी. 428.

की दलील का खंडन करते हुए यह दलील दी कि प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 की नियुक्तियां पूरी तरह से भारत के संविधान के अनुच्छेद 217(2) और अनुच्छेद 224 के अनुसार हैं । प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 ने 10 वर्ष की अवधि तक न्यायिक पद धारण किया है, इसलिए वे राजस्थान उच्च न्यायालय के अपर न्यायाधीशों के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए पूरी तरह से पात्र हैं । अनुच्छेद 224 के खंड (1) के अधीन उच्च न्यायालय के अपर न्यायाधीश की नियुक्ति की अधिकतम अवधि दो वर्ष होने के कारण प्रत्यर्थी सं. 2 और 3, जो दो वर्ष की अवधि के पर्यवसान से पूर्व 62 वर्ष की अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर लेंगे, जो क्रमशः तारीख 1 सितंबर, 2018 और 2 जुलाई 2018 है, इसलिए अधिवर्षिता की आयु तक उनकी नियुक्ति में कोई अवैधता नहीं है । **श्री कुमार पदम प्रसाद** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय का निर्णय लागू नहीं होता है और न ही **एस. पी. गुप्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान पीठ के निर्णय से वर्तमान मामले में याची द्वारा दी गई दलील का समर्थन होता है ।

5. हमने व्यक्तिगत रूप में हाजिर याची और भारत संघ की ओर से विद्वान् अपर महा-सालिसिटर की दलीलों पर विचार किया है ।

6. न्यायिक सेवा, राजस्थान उच्च न्यायालय के अपर न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति की प्रक्रिया और उनकी पदावधि से संबंधित सुसंगत तथ्य विवादग्रस्त नहीं हैं । जब राजस्थान उच्च न्यायालय के कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा तारीख 28 फरवरी, 2016 के पत्र द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 के नामों की सिफारिश की गई थी तब वे दोनों राज्य की न्यायिक सेवा के सदस्य थे । जिस तारीख को उनके नामों की सिफारिश की गई थी, वे पूरी तरह से विचार क्षेत्र में थे और जिस रिक्ति के विरुद्ध उनके नामों की सिफारिश की गई थी वे, रिक्ति होने की तारीख को 58½ वर्ष की विहित आयु सीमा के भीतर थे । कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति ने सिफारिश की प्रक्रिया करते समय विधि और न्याय मंत्री के तारीख 24 सितंबर, 2004 के पत्र द्वारा यथा अधिकथित प्रक्रिया-ज्ञापन का पालन किया था । विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार ने सिफारिश पर कार्यवाही करने के पश्चात् उसे तारीख 22 जुलाई, 2016 को भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के विचार के लिए प्रेषित किया था । उच्चतम न्यायालय के कालेजियम ने तारीख 1 अगस्त, 2016 के अपने कार्यवृत्त द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 के नामों की सेवा-स्रोत से होने के रूप में सिफारिश की थी । भारत सरकार ने उच्चतम न्यायालय के कालेजियम की सिफारिश प्राप्त होने के पश्चात् और भारत के

माननीय राष्ट्रपति का अनुमोदन अभिप्राप्त करने के पश्चात् तारीख 12 मई, 2017 को नियुक्ति अधिसूचित की । इस संपूर्ण प्रक्रिया में एक वर्ष और तीन माह का समय लग गया । अनुच्छेद 224(1) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 की नियुक्ति के लिए तारीख 12 मई, 2017 की जो अधिसूचना जारी की गई थी, उसमें उनकी नियुक्ति उनके द्वारा कार्यभार ग्रहण करने की तारीख से क्रमशः तारीख 1 सितंबर, 2018 और 2 जुलाई, 2018 तक उल्लिखित थी । अधिसूचना में 1 सितंबर, 2018 और 2 जुलाई, 2018 की जो तारीख उल्लिखित हैं, स्पष्ट तौर पर वे तारीखें हैं जब वे उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के रूप में अधिवर्षिता की आयु अर्थात् 62 वर्ष प्राप्त करेंगे । यह उल्लेख करना सुसंगत है कि प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 के साथ-साथ तीन और व्यक्तियों को दो वर्ष की अवधि के लिए अपर न्यायाधीशों के रूप में नियुक्त किया गया था और उनकी पदावधि की बाबत दो वर्ष की अवधि उल्लिखित थी । तारीख 12 मई, 2017 की अधिसूचना को उद्धृत करना सुसंगत है, जो निम्नलिखित प्रभाव की है :–

"अधिसूचना

राष्ट्रपति, भारत के संविधान के अनुच्छेद 224 के खंड (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, सर्वश्री (i) अशोक कुमार गौर, (ii) मनोज कुमार गर्ग, (iii) इन्द्रजीत सिंह, (iv) डा. विरेन्द्र कुमार माथुर और (v) श्री रामचन्द्र सिंह झाला को इस ज्येष्ठता क्रम में राजस्थान उच्च न्यायालय के अपर न्यायाधीशों के रूप में नियुक्त करते हैं ।

सर्वश्री अशोक कुमार गौर, मनोज कुमार गर्ग, इन्द्रजीत सिंह की नियुक्ति उनके द्वारा अपने-अपने पद का कार्यभार ग्रहण करने की तारीख से दो वर्ष की अवधि के लिए होगी । तथापि, डा. विरेन्द्र कुमार माथुर और श्री रामचन्द्र सिंह झाला की नियुक्ति की अवधि उनके द्वारा अपने-अपने पद का कार्यभार ग्रहण करने की तारीख से क्रमशः 1 सितंबर, 2018 और 2 जुलाई, 2018 तक होगी ।

हस्ता./-
(एस. सी. बर्मा)
संयुक्त सचिव, भारत सरकार
दूरभाष - 23072142"

7. याची द्वारा दी गई प्रथम दलील यह है कि प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 की नियुक्ति दो वर्ष की अवधि से कम होने के कारण भारत के संविधान के अनुच्छेद 224 के विपरीत और **एस. पी. गुप्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिकथित विधि के प्रतिकूल है ।

8. भारत के संविधान के अनुच्छेद 224 में अपर और कार्यकारी न्यायधीशों की नियुक्ति के लिए उपबंध किया गया है । अनुच्छेद 224(1) में वर्णित अनुसार, उच्च न्यायालय के अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति "ऐसी अवधि के लिए होगी जो दो वर्ष से अनधिक की नहीं" होगी । **एस. पी. गुप्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान पीठ ने संविधान के अनुच्छेद 224, इसके प्रयोजन और उद्देश्य पर विस्तार पूर्वक विचार किया है । अनुच्छेद 224 में, जैसा कि यह मूल संविधान में था, "उच्च न्यायालय की बैठकों में सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की हाजिरी" शीर्षक अंतर्विष्ट था, जो निम्नलिखित प्रभाव का था :–

> **"224. उच्च न्यायालय की बैठकों में सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की हाजिरी** – इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति, किसी भी समय, राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से किसी व्यक्ति से, जो उस उच्च न्यायालय या किसी अन्य उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है, उस राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में बैठने और कार्य करने का अनुरोध कर सकेगा और प्रत्येक ऐसा व्यक्ति, जिससे इस प्रकार अनुरोध किया जाता है, इस प्रकार बैठने और कार्य करने के दौरान ऐसे भत्तों का हकदार होगा जो राष्ट्रपति आदेश द्वारा अवधारित करे और उसको उस उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की सभी अधिकारिता, शक्तियां और विशेषाधिकार होंगे, किंतु उसे अन्यथा उस उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नहीं समझा जाएगा :
>
> परंतु जब तक यथापूर्वोक्त व्यक्ति उस उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में बैठने और कार्य करने की सहमति नहीं दे देता है तब तक इस अनुच्छेद की कोई बात उससे ऐसा करने की अपेक्षा करने वाली नहीं समझी जाएगी ।"

9. अनुच्छेद 224 ने, जैसा कि यह संविधान में मूलतः अंतर्विष्ट था,

भली-भांति कार्य नहीं किया और इसे न तो पर्याप्त और न ही संतोषजनक पाया गया । संसद् ने उच्च न्यायालयों में मामलों के बढ़ते बकाया का सामना करने के लिए विद्यमान अनुच्छेद 224 में संशोधन करके अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति का उपबंध करते हुए अनुच्छेद 224 के स्थान पर एक नया अनुच्छेद प्रतिस्थापित किया । संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, 1956 द्वारा यथा संशोधित अनुच्छेद 224 निम्नलिखित है :–

> "**224. अपर और कार्यकारी न्यायाधीशों की नियुक्ति** – (1) यदि किसी उच्च न्यायालय के कार्य में किसी अस्थायी वृद्धि के कारण या उसमें कार्य की बकाया के कारण राष्ट्रपति को यह प्रतीत होता है कि उस न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या को तत्समय बढ़ा देना चाहिए तो राष्ट्रपति सम्यक् रूप से अर्हित व्यक्तियों को दो वर्ष से अनधिक की ऐसी अवधि के लिए जो वह विनिर्दिष्ट करे, उस न्यायालय के अपर न्यायाधीश नियुक्त कर सकेगा ।
>
> (2) जब किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से भिन्न कोई न्यायाधीश अनुपस्थिति के कारण या अन्य कारण से अपने पद के कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ है या मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में अस्थायी रूप से कार्य करने के लिए नियुक्त किया जाता है तब राष्ट्रपति सम्यक् रूप से अर्हित किसी व्यक्ति को तब तक के लिए उस न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए नियुक्त कर सकेगा जब तक स्थायी न्यायाधीश अपने कर्तव्यों को फिर से नहीं संभाल लेता है ।
>
> (3) उच्च न्यायालय के अपर या कार्यकारी न्यायाधीश के रूप में नियुक्त कोई व्यक्ति (62 वर्ष) की आयु प्राप्त कर लेने के पश्चात् पद धारण नहीं करेगा ।"

10. **एस. पी. गुप्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान पीठ द्वारा संविधान के सातवें संशोधन द्वारा यथा उपबंधित अनुच्छेद 224 के उद्देश्य और प्रयोजन पर विचार करते हुए निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की है :–

> "37. ..... इसलिए किसी अपर न्यायाधीश को नियुक्त करने की शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति द्वारा तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि या तो उच्च न्यायालय के काम-काज में स्थायी रूप से

वृद्धि हो गई है अथवा उच्च न्यायालय में निलंबित काम-काज इकट्ठा हो गया हो और यद्यपि इन दोनों अवस्थाओं में से कोई एक अवस्था विद्यमान हो तो भी यह आवश्यक हो जाता है कि राष्ट्रपति का इस बारे में भी समाधान हो जाए कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या में अस्थायी रूप से वृद्धि करना आवश्यक है । 'कुछ समय के लिए' शब्दों से स्पष्टतया यह उपदर्शित होता है कि ऐसे न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि, जिसे राष्ट्रपति अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति करके कर सकेगा, अस्थायी वृद्धि होगी जिससे कि वे न्यायाधीश उच्च न्यायालय के काम-काज में अस्थायी वृद्धि को निपटाएंगे अथवा उच्च न्यायालय में निलम्बित काम-काज को निष्पादित करेंगे । अनुच्छेद 224 खण्ड (1) में यह अनुध्यात नहीं किया गया है कि न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि किसी अनिश्चित कालावधि के लिए होनी चाहिए । स्पष्ट रूप से उद्देश्य यह है कि किसी अपर न्यायाधीश की नियुक्ति संक्षिप्त कालावधि के लिए की जानी चाहिए ताकि उच्च न्यायालय के काम-काज में जो अस्थायी वृद्धि हो गई है उसे निपटा दिया जाए और/या लंबित मामलों को निपटा दिया जाए । अनुच्छेद 224 के खण्ड (1) में इस बारे में पर्याप्त संकेत है कि अपर न्यायाधीशों की नियुक्तियां संक्षिप्त कालावधि के लिए आशयित हैं और संसद् की यह प्रत्याशा है कि पर्याप्त संख्या में अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाएगी जिससे कि काम-काज में अस्थायी वृद्धि को निपटा दिया जाएगा अथवा दो वर्ष या लगभग इस कालावधि के भीतर लंबित मामलों को निष्पादित कर दिया जाएगा । यही कारण है कि अनुच्छेद 224 के खण्ड (1) में यह उपबंध किया गया है कि अपर न्यायाधीशों की पर्याप्त संख्या होनी चाहिए जिससे कि वे प्रसामान्य रूप से संस्थित मामलों पर विचार कर सकें और जहां तक काम-काज में अस्थायी वृद्धि का संबंध है अथवा लंबित पड़े मामलों का संबंध है, अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति दो वर्ष से अनधिक की कालावधि के लिए की जाएगी जिससे ऐसे काम-काज को निपटाने में सहायता मिलेगी..... ।"

11. तथापि, संविधान पीठ ने यह उल्लेख और मत व्यक्त किया कि अनुच्छेद 224 के खंड (1) के आशय तथा प्रयोजन को कभी प्रभावशील नहीं बनाया गया और अनुच्छेद 224 का व्यवहारिक रूप से जो प्रयोग किया

गया, उसका संविधान पीठ ने निर्णय के पैरा 38 में निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है :–

> "38. ..... अनुच्छेद 224 के खंड (1) के पुर:स्थापित किए जाने का समस्त उद्देश्य तथा प्रयोजन विपर्यस्त हो गया और इस अनुच्छेद के अधीन अपर न्यायधीशों की नियुक्ति संक्षिप्त कालावधि के लिए अस्थायी न्यायाधीशों के रूप में नहीं की जाती थी, जिससे कि जैसे ही निलंबित मामलों को निपटा दिया जाता, वे अपनी अवधि के अवसान पर वापस चले जाते किंतु उनकी नियुक्ति ऐसे न्यायाधीशों के रूप में की जाती थी, जिनकी अवधि, हालांकि अपर न्यायाधीश के रूप में प्रत्येक नियुक्ति दो वर्ष से अनधिक कालावधि पर्यन्त सीमित थी, तथापि, उसे समय-समय पर तब तक बहाल कर दिया जाता जब तक कि उनके लिए स्थायी न्यायाधीशों के संवर्ग में रिक्त स्थान प्राप्त नहीं हो जाता । व्यापक रूप से, प्रत्येक व्यक्ति उच्च न्यायालय संबंधी न्यायपालिका में अपर न्यायाधीश के रूप में इस स्पष्ट प्रत्याशा के साथ प्रविष्ट करता था कि जैसे ही उच्च न्यायालय में किसी स्थायी न्यायाधीश का पद रिक्त होगा, उसे उसी उच्च न्यायालय में उपलभ्य हो जाएगा तो उसकी पुष्टि स्थायी न्यायाधीश के रूप में कर दी जाएगी और यदि उसके पद की अवधि के पर्यवसान-पर्यन्त उसे कोई रिक्ति उपलभ्य नहीं होती है तो उसे उसी उच्च न्यायालय में अतिरिक्त अवधि के लिए अपर न्यायाधीश के रूप में पुनः नियुक्त कर दिया जाएगा । इसलिए, न्यायाधीश सर्वथा इस बात से अनभिज्ञ थे कि उनकी अवधि के अवसान पर वे वापस चले जाएंगे क्योंकि उन्हें मात्र अस्थायी न्यायाधीशों के रूप में संक्षिप्त कालावधि के लिए निलंबित पड़े मामलों को निपटाने की दृष्टि से नियुक्त किया गया था – यह स्थिति उस समय होती जब अनुच्छेद 224 के खंड (1) को उसके सही आशय तथा प्रयोजन के अनुसार कार्यान्वित किया जाता – अपर न्यायाधीश उच्च न्यायालय संबंधी न्यायपालिका में इस विधिसम्मत प्रत्याशा सहित प्रविष्ट करते कि उनकी अवधि के पर्यवसित हो जाने पर उन्हें वापस जाना पड़ेगा बल्कि या तो उन्हें अपर न्यायाधीशों के रूप में अतिरिक्त अवधि के लिए पुनः नियुक्त कर दिया जाएगा अथवा यदि इसी बीच स्थायी न्यायाधीश के पद पर कोई रिक्ति उपलभ्य हो जाती है तो स्थायी न्यायाधीशों के रूप में

उनकी पुष्टि कर दी जाएगी । यह प्रत्याशा जो कि विशिष्ट रीति के कारण अपर न्यायाधीशों के मन में प्रज्जनित हुई थी, जिसमें कि अनुच्छेद 224 का खंड (1) को प्रवर्तित किया गया था, उसकी अब सरकार द्वारा उपेक्षा नहीं की जा सकती कि जब किसी अपर न्यायाधीश की अवधि समाप्त हो जाती है तो सरकार अपनी इच्छानुसार उसे हटा सकती है । मन में उद्भूत प्रत्याशा के कारण जो कि उस पद्धति के आधार पर उद्भूत हुई थी जिसका अनुसरण लगभग 25 वर्षों तक किया जाता रहा, कोई अपर न्यायाधीश इस बात का हकदार है कि उसकी मूल अवधि के पर्यवसित हो जाने पर उस पर अतिरिक्त अवधि के लिए अपर न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति हेतु विचार किया जाए और यदि इसी बीच किसी स्थायी न्यायाधीश के पद पर रिक्ति उसे उपलभ्य हो जाती है जो कि अपर न्यायाधीश में से ज्येष्ठता के आधार पर उसे मिल सकती है तो उसे यह अधिकार होगा कि अपने उच्च न्यायालय में स्थायी न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए उस पर विचार किया जाए ।"

12. **एस. पी. गुप्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान पीठ द्वारा अधिकथित विनिश्चयाधार पर, जिसका याची द्वारा अवलंब लिया गया है, स्वयं संविधान पीठ द्वारा ऊपर जो कहा गया है उसको ध्यान में रखते हुए विचार किए जाने की आवश्यकता है । अब, उन तथ्यों की पृष्ठभूमि का उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है जिनमें संविधान पीठ को पैरा 44 में कतिपय मताभिव्यक्तियां करनी पड़ी । जिस रिट याचिका में अपर न्यायाधीशों की कालावधि का प्रश्न विचार किए जाने के लिए आया था, वह दिल्ली उच्च न्यायालय में फाइल की गई थी और उसे 1981 के अंतरित मामला सं. 20 के रूप में इस न्यायालय में अंतरित किया गया था । उक्त रिट याचिका में संघ के विधि मंत्री द्वारा जारी किए गए तारीख 18 मार्च, 1981 के परिपत्र को चुनौती देने के अतिरिक्त दिल्ली उच्च न्यायालय के तीन अपर न्यायाधीशों अर्थात् श्री ओ. एन. वोहरा श्री एस. एन. कुमार और श्री एस. बी. वाड की अल्पकालिक नियुक्ति के संबंध में एक शिकायत की गई थी । उपरोक्त अपर न्यायाधीशों को मूलतः दो वर्ष की अवधि के लिए अपर न्यायाधीशों के रूप में नियुक्त किया गया था और उनकी कालावधि तारीख 6 मार्च, 1981 की मध्यरात्रि को समाप्त हो रही थी । उन्हें आगे तारीख 7 मार्च, 1981 से केवल तीन माह की अवधि के

लिए अपर न्यायाधीशों के रूप में नियुक्त किया गया था । रिट याचिका में ऐसी अल्पकालिक नियुक्ति की शिकायत की गई थी । यह दलील दी गई कि ऐसी अल्पकालिक नियुक्तियां अनुच्छेद 224 के निबंधनों के अनुसार अनुचित थी और किसी भी स्थिति में न्यायपालिका की स्वतंत्रता की ध्वंसकारी हैं । केन्द्रीय सरकार ने बाद में सर्वश्री ओ. एन. वोहरा और एस. एन. कुमार की पदावधि नहीं बढ़ाई, जबकि एस. बी. वाड तारीख 7 जून, 1981 से एक वर्ष की अवधि के लिए अपर न्यायाधीश के रूप में बने रहे । सर्वश्री ओ. एन. वोहरा और एस. एन. कुमार आगे की अवधि के लिए पद पर जारी नहीं रहे ।

13. याची ने उस बात का जोरदार रूप से अवंलब लिया है जो संविधान पीठ ने पैरा 44 में कही है, जहां उपरोक्त संदर्भ में संविधान पीठ ने यह मत व्यक्त किया था कि जब बकाया लंबित मामले ऐसे हैं कि उन्हें दो वर्ष से कम अवधि के भीतर संभवतः निपटाया नहीं जा सकता है, तो अपर न्यायधीशों को अवश्य ही दो वर्ष की कालावधि के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए, इससे कम नहीं । संविधान पीठ द्वारा पैरा 44 में की गई मताभिव्यक्तियां निम्नलिखित प्रभाव की हैं :–

> "44. एक अंतिम दलील अभी यह शेष रहती है कि जब कोई अपर न्यायाधीश नियुक्त किया जाता है तो वह कौन-सी कालावधि होनी चाहिए, जिसके लिए उसकी नियुक्ति की जानी चाहिए । अनुच्छेद 224 का खंड (1) इस बात का उपबंध करता है कि किसी अपर न्यायाधीश की नियुक्ति दो वर्षों से अनधिक कालावधि के लिए की जानी चाहिए । अनुच्छेद 224 के खंड (1) द्वारा विहित यह बाह्य सीमा है और इसलिए विद्वान् अटर्नी जनरल द्वारा दी गई दलील यह थी कि किसी अपर न्यायाधीश की नियुक्ति, किसी भी कालावधि के लिए चाहे वह कितनी भी संक्षिप्त हो, की जा सकती है जहां तक कि यह दो वर्षों से अधिक न हो । ओ. एन. वोहरा, एस. एन. कुमार और एस. बी. वाड की तीन मास के लिए नियुक्तियां इस प्रकार से विद्वान् अटर्नी जनरल द्वारा अनुच्छेद 224 के खंड (1) के विस्तार और प्रविषय के भीतर होने के कारण समर्थित की गई हैं । हम इस दलील को स्वीकार नहीं कर सकते हैं । निस्संदेह, यह बात सत्य है कि अनुच्छेद का खंड (1) उस अवधि के लिए बाह्य सीमा नियत करता है जिसके लिए किसी अपर न्यायाधीश को नियुक्त किया जा सकता

है । किंतु वह इसलिए किया गया है क्योंकि ऐसे मामले हो सकते हैं जहां कि कारबार और अवशिष्ट लंबित मामलों में अस्थायी वृद्धि इतनी कम हो कि उन्हें दो वर्षों से कम कालावधि के लिए अपर न्यायाधीशों को नियुक्त करके उनका निपटान करना संभव हो । यदि कारबार या अवशिष्ट लंबित मामलों में अस्थायी वृद्धि थोड़े समय के भीतर निपटायी जा सकती है तो पूरे दो वर्षों की कालावधि के लिए अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति क्यों की जानी चाहिए । यही कारण है कि संसद् ने इस बात का उपबंध किया था कि अपर न्यायाधीश को ऐसी कालावधि के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए जो दो वर्षों से अनधिक हो । किंतु जब अवशिष्ट लंबित मामले इतने अधिक हों कि उन्हें 10 वर्षों की कालावधि के भीतर निपटाए जाने की संभावना न हो – और जब हम 10 वर्ष कहते हैं तो हम एक बहुत परिमित अनुमान लगाते हैं – तो उस समय दो वर्षों से कम कालावधि के लिए अपर न्यायाधीश नियुक्त करने के लिए क्या औचित्य है । स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 224 के खंड (1) के अधीन प्रदत्त शक्ति के प्रविषय के यह बात बाहर होगी जब कि अवशिष्ट लंबित मामले इतने हैं कि वे संभव रूप से दो वर्षों की कम कालावधि के भीतर निपटाए नहीं जा सकते तो अपर न्यायाधीशों की दो वर्षों की कालावधि के लिए न कि उससे कम नियुक्ति की जानी चाहिए..... ।"

14. इस प्रकार संविधान पीठ द्वारा उपरोक्त मताभिव्यक्तियां उस पृष्ठभूमि में की गईं थी जब यद्यपि तीन अपर न्यायाधीश आरंभ में दो वर्ष की अवधि के लिए नियुक्त किए गए थे किंतु उन्हें आगे केवल तीन माह की अवधि के लिए नियुक्त किया गया था और उसके पश्चात् केवल एक न्यायाधीश एक वर्ष की अवधि के लिए पद पर बना रहा । संविधान पीठ ने अनुच्छेद 224 के प्रयोजनों की परीक्षा करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया कि जब अवशिष्ट लंबित मामलों की संख्या इतनी अधिक हो कि उन्हें संभवतः निपटाया न जा सकता हो तब अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति का प्रयोजन और उद्देश्य यह है कि नियुक्ति दो वर्ष के लिए की जानी चाहिए न कि उससे कम । किंतु संविधान पीठ की उपरोक्त मताभिव्यक्ति को उस संदर्भ के प्रतिनिर्देश करते हुए पढ़ा जाना चाहिए, जिस संदर्भ में यह मताभिव्यक्ति की गई थी । संविधान पीठ के समक्ष इस प्रश्न पर कि अपर न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति की शेष पदावधि

जब दो वर्ष से कम हो तो क्या ऐसी नियुक्ति अनुच्छेद 224 के अनुरूप है या नहीं, न तो विचार किया गया था और न ही कोई राय अभिव्यक्त की गई थी, हालांकि पैरा 32 में एक मताभिव्यक्ति की गई थी जिससे इस मत का समर्थन होता है कि ऐसे मामले में जहां अपर न्यायाधीश दो वर्ष की अवधि के लिए नियुक्त किया गया है, तो वह न्यायाधीश के पद से हट जाएगा यदि वह अपनी दो वर्ष की कालावधि के पर्यवसान से पूर्व 62 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है । इससे स्पष्ट रूप से इस बात का समर्थन होता है कि ऐसे अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति की पदावधि, जिनकी सेवानिवृत्ति होने में दो वर्ष से कम हैं, अनुच्छेद 224 के प्रतिकूल नहीं है । संविधान पीठ द्वारा पैरा 32 में निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां की गईं हैं :–

> "32. ..... अनुच्छेद 224 के खंड (3) में अन्य बातों के साथ यह उपबंध किया गया है कि अपर न्यायाधीश के रूप में नियुक्त कोई व्यक्ति 62 वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् उस पद को धारण नहीं करेगा । इसलिए, यदि किसी अपर न्यायाधीश को दो वर्ष की कालावधि के लिए नियुक्त किया गया है, तथापि, वह दो वर्ष की अपनी अवधि के अवसान से पूर्व न्यायाधीश के पक्ष से हट जाएगा यदि वह इस बीच 62 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है ।"

15. **एस. पी. गुप्ता** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान पीठ की मताभिव्यक्तियों से, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है, स्पष्ट तौर पर याची की इस दलील का समर्थन नहीं होता है कि अपर न्यायाधीशों की दो वर्ष से कम अवधि के लिए नियुक्ति तब अनुच्छेद 224 के प्रतिकूल है जब वे दो वर्ष से पूर्व अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर रहे हैं । इस प्रकार, हम याची की प्रथम दलील में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं ।

16. अब हम याची की द्वितीय दलील पर आते हैं । याची ने यह दलील दी है कि यद्यपि उस तारीख को जब उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 के नामों की अपर न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति के लिए सिफारिशें की गईं थीं, वे राज्य की न्यायिक सेवा के सदस्य थे किंतु जिस दिन उन्हें अनुच्छेद 224 के अधीन नियुक्ति जारी की गई थी, वे पहले ही न्यायिक सेवा से सेवानिवृत्त हो गए थे और इसलिए अपर न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र नहीं थे ।

17. याची ने **श्री कुमार पदम प्रसाद** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस

न्यायालय के निर्णय का इस दलील के समर्थन में अवलंब लिया है कि जो व्यक्ति न्यायिक सेवा का सदस्य नहीं है, वह अपर न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र नहीं है । **श्री कुमार पदम प्रसाद** (उपर्युक्त) वाला ऐसा मामला था जहां याची ने श्री के. एन. श्रीवास्तव की गुवाहाटी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति को इस आधार पर चुनौती दी थी कि वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 217 में यथा अंतर्विष्ट नियुक्ति के लिए पात्रता पूरी नहीं करते हैं । श्री के. एन. श्रीवास्तव के नाम की सिफारिश इस आधार पर की गई थी कि उन्होंने कम से कम दस वर्ष न्यायिक पद धारण किया है । रिट याचिका में दी गई चुनौती यह थी कि श्री के. एन. श्रीवास्तव अनुच्छेद 217(2)(क) के अधीन यथा परिभाषित न्यायिक पद अभिव्यक्ति के अंतर्गत नहीं आते हैं । इस न्यायालय ने **चंद्र मोहन** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 217(2)(क) में यथा प्रयुक्त न्यायिक पद अवश्य राज्य की न्यायिक सेवा का अंग होना चाहिए । पैरा 25 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "25. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि संविधान के अनुच्छेद 217(2)(क) के अधीन 'न्यायिक पद' अभिव्यक्ति का निर्वचन संविधान के भाग 6 के अध्याय 5 और 6 की स्कीम के अनुरूप किया जाना चाहिए । इसलिए हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि संविधान के अनुच्छेद 217(2)(क) में 'न्यायिक पद' अभिव्यक्ति से ऐसा 'न्यायिक पद' अभिप्रेत है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 236(ख) के अधीन यथा परिभाषित न्यायिक सेवा का है । इसलिए संविधान के अनुच्छेद 217(2)(क) के अधीन किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हता प्राप्त करने के लिए कोई व्यक्ति अवश्य ऐसे न्यायिक पद पर होना चाहिए जो राज्य की न्यायिक सेवा का अंग हो ।"

18. यह अभिनिर्धारित करने के पश्चात् कि न्यायिक पद अवश्य राज्य की न्यायिक सेवा का अंग होना चाहिए, श्री के. एन. श्रीवास्तव द्वारा धारित पदों का विवरण दिया गया और यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि श्री के. एन. श्रीवास्तव द्वारा धारित पद एक न्यायिक पद नहीं था और वह

---

[1] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 1987.

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में अर्हित नहीं थे । इस न्यायालय द्वारा पैरा 36 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "36. हम पहले ही यह अभिनिर्धारित कर चुके हैं कि संविधान के अनुच्छेद 217(2)(क) में 'न्यायिक पद' से संविधान के अनुच्छेद 236(ख) में यथा परिभाषित न्यायिक सेवा के एक अंग के रूप में कोई पद अभिप्रेत है । श्रीवास्तव द्वारा करीब छः मास की अवधि के लिए धारित उपायुक्त के सहायक का पद न तो न्यायिक पद था और न ही वह संविधान के अनुच्छेद 217(ख) में यथा परिभाषित न्यायिक सेवा का अंग था । इसलिए, श्री अनिल दीवान और श्री राम जेठमलानी द्वारा दी गई द्वितीय दलील को स्वीकार करते हैं और यह अभिनिर्धारित करते हैं कि श्रीवास्तव भारत के संविधान के अनुच्छेद 217(2)(क) के अधीन किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हित नहीं थे ।"

19. याची ने **श्री कुमार पदम प्रसाद** (उपर्युक्त) वाले मामले के निर्णय के पैरा 25, 35 और 41 का अवलंब लिया है, जो निम्नलिखित प्रभाव के हैं :–

> "25. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि संविधान के अनुच्छेद 217(2)(क) के अधीन 'न्यायिक पद' अभिव्यक्ति का निर्वचन संविधान के भाग 6 के अध्याय 5 और 6 की स्कीम के अनुरूप किया जाना चाहिए । इसलिए हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि संविधान के अनुच्छेद 217(2)(क) में 'न्यायिक पद' अभिव्यक्ति से ऐसा 'न्यायिक पद' अभिप्रेत है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 236(ख) के अधीन यथा परिभाषित न्यायिक सेवा का है । इसलिए संविधान के अनुच्छेद 217(2)(क) के अधीन किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हता प्राप्त करने के लिए कोई व्यक्ति अवश्य ऐसे न्यायिक पद पर होना चाहिए जो राज्य की न्यायिक सेवा का अंग हो ।
>
> * * * * *
>
> 35. "पद" शब्द के अनेक अर्थ हैं और हमें यह देखना है कि उस संदर्भ में जिसमें यह संविधान में प्रयोग किया गया है, इस शब्द

को दिया जाने वाला उचित अर्थ कौन सा है । हमारी यह राय है कि संविधान निर्माताओं का 'न्यायिक पद' से वह अभिप्राय नहीं था और हो भी नहीं सकता था जो स्वतंत्र रूप से अस्तित्व में नहीं था और जिसके कर्तव्य या कर्तव्यों का कोई भाग किसी व्यक्ति को प्रदान किया जा सकता था चाहे वह प्रशिक्षित हो या न हो अथवा न्याय प्रशासन में हों या न हो । हमारे संविधान के अनुच्छेद 217(2)(क) में 'न्यायिक पद' शब्द से अधिष्ठायी स्थिति के साथ एक अस्तित्वशील पद अभिप्रेत है जिसका अस्तित्व उस व्यक्ति से, जो उस पद पर था, स्वतंत्र है ।

* * * * *

41. हम कुमार पदम प्रसाद की अंतरण रिट याचिका को मंजूर करते हैं और यह घोषणा करते हैं कि के. एन. श्रीवास्तव, भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति पत्र जारी किए जाने की तारीख को उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किए जाने हेतु अर्हित नहीं थे । परिणामस्वरूप हम गुवाहाटी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में उसकी नियुक्ति को अभिखंडित करते हैं । हम भारत संघ और हमारे समक्ष उपस्थित अन्य प्रत्यर्थियों को यह निदेश देते हैं कि वे के. एन. श्रीवास्तव को भारत के संविधान के अनुच्छेद 219 के अधीन शपथ न दिलाएं या प्रतिज्ञान न कराएं । हम आगे के. एन. श्रीवास्तव को संविधान के अनुच्छेद 219 के निबंधनों में शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पदभार ग्रहण करने से अवरुद्ध करते हैं । हम रजिस्ट्री कार्यालय को यह निदेश देते हैं कि वह भारत के राष्ट्रपति को हमारे इस निर्णय के अनुसार विचार करने और आवश्यक कार्यवाही करने हेतु इस निर्णय की एक प्रति भेज दें । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाएगा ।"

20. इस न्यायालय द्वारा पैरा 25 में की गई इस मताभिव्यक्ति के बारे में कोई विवाद नहीं किया जा सकता है कि अनुच्छेद 217(2)(क) के अधीन उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए व्यक्ति अवश्य ऐसा पद धारण करता हो, जो अवश्य राज्य की न्यायिक सेवा का अंग होना चाहिए । याची द्वारा पैरा 35 में की गई इस अभिव्यक्ति पर अधिक जोर दिया जा रहा है कि अनुच्छेद 217(2)(क) में 'न्यायिक पद' से अधिष्ठायी

स्थिति के साथ अस्तित्वशील पद अभिप्रेत है जिसका अस्तित्व उस व्यक्ति से स्वतंत्र है जो उस पद पर है । इस न्यायालय द्वारा उपरोक्त मताभिव्यक्ति श्री के. एन. श्रीवास्तव द्वारा राज्य में धारित विभिन्न पदों की प्रकृति के प्रतिनिर्देश करते हुए विशेष रूप से इस दलील पर विचार करते हुए की गई थी कि श्री श्रीवास्तव द्वारा 1937 के नियमों के नियम 9 द्वारा उपायुक्त का पद धारण करने के कारण क्या वह अनुच्छेद 217(2)(क) सपठित स्पष्टीकरण के अधीन अपेक्षा को पूरी करते हैं या नहीं । पैरा 31 में जोरदार रूप से दिए गए तर्क को पैरा 32 में नामंजूर कर दिया गया है, जो निम्नलिखित प्रभाव का है :–

> "31. श्री वेणुगोपाल ने यह दलील दी की सिविल और दांडिक दोनों ओर का न्याय-प्रशासन 1937 के नियमों के अधीन अनन्यतः उपायुक्त और उसके सहायकों द्वारा किया जा रहा था । कोई अन्य न्यायालय काम नहीं कर रहे थे । दांडिक और सिविल न्याय करने के अतिरिक्त लुशाई पहाड़ियों के नाम से ज्ञात जिले का संपूर्ण प्रशासन असम के राज्यपाल, लुशाई पहाड़ी के उपायुक्त और उसके सहायकों में निहित था । उपायुक्त 1937 के नियमों के अधीन मृत्यु दंड, उक्त अपराध के लिए उपबंधित अधिकतम निर्वासन या कारावास या किसी रकम के जुर्माने का दंडादेश पारित करने के लिए सक्षम था । उपायुक्त के सहायकों को ऐसी शक्तियों का प्रयोग करना था जो राज्यपाल द्वारा प्रदत्त की गईं थी और जो दंड प्रक्रिया संहिता में यथा परिभाषित किसी प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट की शक्तियों से अनधिक थी । उसके किसी सहायक द्वारा पारित किसी आदेश के विरुद्ध कोई अपील उपायुक्त को होती थी । इसी प्रकार, नियम 15 के अधीन सिविल न्याय प्रशासन उपायुक्त और उसके सहायकों को सौंपा गया था । श्रीवास्तव ने 23 जून, 1979 से 19 दिसम्बर, 1979 तक उपायुक्त के सहायक की शक्तियों का प्रयोग किया था । श्री वेणुगोपाल के मतानुसार सहायक का पद जिस पर श्रीवास्तव को छह माह की अवधि के लिए नियुक्त किया गया था, एक न्यायिक पद था । उनके मतानुसार, उक्त अवधि जिनके लिए उसने न्यायिक पद धारणा किया था और उक्त पद की गुणवत्ता सुसंगत तथ्य नहीं हैं । इसलिए उन्होंने जोर देकर यह दलील दी कि चूंकि श्रीवास्तव ने 1937 के नियमों के अधीन उपायुक्त के सहायक का न्यायिक पद

धारण किया था, इसलिए वह संविधान के अनुच्छेद 217(2)(क) और साथ में पठित उसके स्पष्टीकरण के खंड (क) के अधीन अर्हताओं को पूरा करता है । उनके मतानुसार, उपायुक्त के सहायक का पद त्यागने के पश्चात् श्रीवास्तव द्वारा धारित सभी पदों के लिए विधि का विशेष ज्ञान अपेक्षित है और इसलिए उक्त संपूर्ण अवधि 10 वर्ष की गणना के लिए सम्मिलित किए जाने के दायित्वाधीन है जिसके दौरान उसने न्यायिक पद धारण किया था । उनके मतानुसार, श्रीवास्तव किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हित हैं ।

32. हमने श्री वेणुगोपाल द्वारा दी गई दलीलों पर गंभीरता पूर्वक विचार किया है । हम उनसे सहमत होने के लिए तैयार नहीं हैं ।"

21. इस प्रकार, **श्री कुमार पदम प्रसाद** (उपर्युक्त) वाले मामले के पैरा 35 में की गई मताभिव्यक्ति, जो ऊपर उद्धृत की गई है, उपरोक्त संदर्भ में की गई थी । इस न्यायालय का सरोकार उस विवाद्यक से नहीं था जो वर्तमान रिट याचिका में उठाया गया है कि क्या उच्च न्यायालय के अपर न्यायाधीश के रूप में नियुक्त व्यक्ति अपनी नियुक्ति के समय न्यायिक पद धारण कर रहा हो या नहीं, भले ही उसने उस समय राज्य का न्यायिक पद धारण किया हो जब उच्च न्यायालय द्वारा अपर न्यायाधीश के लिए उसके नाम की सिफारिश की गई थी । इस प्रकार, इस न्यायालय द्वारा पैरा 25, 35 और 41 में की गई मताभिव्यक्तियों से उन दलीलों का समर्थन नहीं होता है जो दलीलें याची द्वारा दिए जाने की ईप्सा की गई है ।

22. विद्वान् अपर महा-सालिसिटर, श्री मनिंदर सिंह ने यह दलील दी कि अनुच्छेद 217(2)(क) में न्यायिक पद 'धारण कर चुका है' शब्दों का प्रयोग किया गया है जिससे यह अभिप्रेत है कि ऐसा व्यक्ति जो कम से कम दस वर्ष की अवधि के लिए न्यायिक पद धारण कर चुका है, अपर न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र है ।

23. शब्द और वाक्यांश स्थायी संस्करण, वाल्यूम 19 में 'धारण कर चुका है' शब्द को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया गया है :–

"धारण कर चुका है" शब्द का कोई प्रथामिक या तकनीकी अर्थ नहीं है और इसका अर्थ व्यापक तौर पर उस संबंध द्वारा अवधारित

किया जाता है जिस संबंध में यह प्रयुक्त होता है । राज्य **बनाम** थॉमसन, 449 पी-2डी, 656, 659, 79 एन. एम. 748.

भूतकालिक शब्द "धारण कर चुका है" का अर्थबोधन समय से नहीं है । हॉलमन ट्रांसफर कंपनी **बनाम** सिटी ऑफ पोर्टलैंड, 350 पी-2डी, 929, 930, 196 ओआर. 551."

24. अनुच्छेद 217(2)(क) में यथा प्रयुक्त शब्द "धारण कर चुका है" से यह उपदर्शित होता है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए जो विहित अर्हता है वह यह है कि ऐसा व्यक्ति भारत के राज्यक्षेत्र में कम से कम दस वर्ष कोई न्यायिक पद धारण कर चुका हो । उपरोक्त खंड में 'धारण कर चुका है' शब्द के प्रयोग से यह उपदर्शित नहीं होता है कि इस अर्हता का यह भी अर्थ है कि दस वर्ष कोई न्यायिक पद धारण करने के अतिरिक्त पदधारी अनुच्छेद 224 के अधीन सूचना जारी होने के समय भी न्यायिक पद धारण कर रहा हो ।

25. उपरोक्त निष्कर्ष का समर्थन अनुच्छेद 217(2) के स्पष्टीकरण (क) और (कक) से भी होता है । स्पष्टीकरण (क) में यह उपबंधित है कि भारत के राज्यक्षेत्र में न्यायिक पद धारण करने की अवधि की संगणना करने में वह अवधि भी सम्मिलित की जाएगी जिसके दौरान कोई व्यक्ति न्यायिक पद धारण करने के पश्चात् किसी उच्च न्यायालय का अधिवक्ता रहा है या उसने किसी अधिकरण के सदस्य का पद धारण किया है अथवा संघ या राज्य के अधीन कोई ऐसा पद धारण किया है जिसके लिए विधि का विशेष ज्ञान अपेक्षित है ।

26. अनुच्छेद 217(2)(क) में यथा उपबंधित पात्रता के पठन मात्र से यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 राजस्थान उच्च न्यायालय के अपर न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति के लिए अपात्र नहीं हैं । **श्री कुमार पदम प्रसाद** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय से याची द्वारा हमारे समक्ष दी गई दलील का समर्थन नहीं होता है । इस प्रकार, हम याची की द्वितीय दलील में बल नहीं पाते हैं ।

27. इस मामले से विलग होने से पूर्व हमें उस प्रयोजन और उद्देश्य को स्मरण करने की आवश्यकता है जिसके लिए 1956 के सातवें संविधान संशोधन द्वारा संविधान का अनुच्छेद 224 प्रतिस्थापित किया गया

था । अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति विभिन्न उच्च न्यायालयों में मामलों के बढ़ते बोझ का सामना करने के लिए नियुक्ति के रूप में परिकल्पित है । उच्च न्यायालय के काम-काज में अस्थायी वृद्धि या उसमें काम का बकाया ऐसी नियुक्ति करने का कारण था या अनुच्छेद 224 के अधीन शक्ति का अवलंब लेने के कारण था, यद्यपि, जैसा कि **एस. पी. गुप्त** (उपर्युक्त) वाले में संविधान पीठ द्वारा उल्लेख किया गया है, समय बीतने के साथ-साथ अनुच्छेद 224 के प्रयोग में सारभूत रूप से परिवर्तन आया है । किंतु इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि उच्च न्यायालय के काम-काज में वृद्धि का सामना करने के लिए और मामलों के बकाया के कारण सभी संबंधित द्वारा उस उद्देश्य और प्रयोजन को पूर्ण करने के लिए आकस्मिक उपाय करने की आवश्यकता है जिसके लिए सांविधानिक उपबंध लाया गया था, तथापि, उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति में अत्यधिक विलंब होने से न केवल वह प्रयोजन और उद्देश्य विफल हो जाता है जिसके लिए अनुच्छेद 224(1) को संविधान में लाया गया था, अपितु उन मुकदमा लड़ने वाले व्यक्तियों की आशा और विश्वास को भी धक्का पहुंचता है जो न्याय की ईप्सा करने और अपने मामलों के शीघ्र निपटारे के लिए उच्च न्यायालयों में आते हैं ।

28. **सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स-आन-रिकार्ड एसोसिएशन और अन्य** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने स्पष्ट शब्दों में यह मत व्यक्त किया है कि नियुक्ति की प्रक्रिया प्रत्याशित रिक्ति की तारीख से कम से कम एक माह पूर्व आरंभ की जानी चाहिए । ऐसा एक आदर्श स्थिति की प्राप्ति के लिए अर्थात् यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया था कि पद रिक्त होने के पश्चात् तुरंत भरा जाए ताकि समय बर्बाद न हो । दुर्भाग्यवश, यह अभी भी दूर की बात है । पहली बात तो यह है कि उच्च न्यायालय द्वारा समय पर नाम ही अग्रेषित नहीं किए जाते हैं । प्रत्याशित रिक्ति होने के एक माह पूर्व नाम भेजने की बात तो क्या कहें, रिक्ति हो जाने के पश्चात् काफी समय तक भी नाम अग्रेषित नहीं किए जाते हैं, इससे पूर्व कि वे उच्चतम न्यायालय के कॉलेजियम को अनुमोदन के लिए कार्यपालिका की सूचना के साथ भेजे जाएं, वे कार्यपालिका के स्तर पर असम्यक् रूप से लंबे समय तक लंबित पड़े रहते हैं । यहां तक

---

[1] (1993) 4 एस. सी. सी. 441.

कि कॉलेजियम द्वारा नामों की सहमति देने के पश्चात् भी ये नाम कार्यपालिका के पास लंबित पड़े रहते हैं । इन सबके परिणामस्वरूप अत्यधिक विलंब होता है । कभी-कभी तो नाम अग्रेषित करने की तारीख से नियुक्ति तक की प्रक्रिया पूर्ण करने में एक वर्ष से अधिक का समय लग जाता है । ऐसे दृष्टांत भी हैं, जहां व्यतीत हुआ समय एक वर्ष से भी ज्यादा है । अधीनस्थ न्यायपालिका के न्यायिक अधिकारियों के मामले में, जिनकी उच्च न्यायालय में नियुक्ति के लिए सिफारिश की जाती हैं, बहुत अधिक समय लगने की इस प्रक्रिया से उनकी पदावधि पर प्रतिकूल रूप से प्रभाव पड़ता है । यह सर्वविदित है कि अधिकांश न्यायिक अधिकारियों को उन्नयन का अवसर केवल तब मिलता है जब उनकी कुछ वर्षों की सेवा शेष रह जाती है । इस प्रकार, जब असम्यक् रूप से लंबा समय लिया जाता है, तब यह कम पदावधि और भी घट जाती है । इस वजह से भी वर्तमान जैसी स्थिति पैदा होती है । समान रूप से, बार के ऐसे सदस्यों को भी एक अलग प्रकार की कठिनाई झेलनी पड़ती है जिनके नामों की उच्च न्यायालय में उन्नयन के लिए सिफारिश की जाती है । यह अन्यायपूर्ण है कि ऐसे व्यक्तियों का भाग्य अनिश्चित अवधि के लिए अधर में लटका रहता है और इससे अनावश्यक अटकलबाजी की बातें उत्पन्न होती हैं । इससे अप्रिय हालत पैदा होते हैं जिनसे बचा जा सकता है । इसलिए, यह न्यायपालिका सहित सभी पणधारियों के हित में है कि प्रक्रिया के प्रत्येक प्रक्रम के लिए निश्चित समय-रेखा निर्धारित की जाए ताकि नियुक्ति की प्रक्रिया एक समय-सीमा के भीतर पूर्ण हो सके । हमें और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है । यह कहना होगा कि मुकदमा लड़ने वाले व्यक्तियों की आशा और आकांक्षा को जागृत रखने के लिए और त्वरित न्याय प्रदान करने की वचनबद्धता को पूरा करने के लिए उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया को उन सभी के द्वारा और अधिक तत्पर करने की आवश्यकता है जिन्हें भारत के संविधान द्वारा सौंपी गई सांविधानिक बाध्यता का निर्वहन करना है । इन मताभिव्यक्तियों के साथ हम इस रिट याचिका को खारिज करते हैं ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

जस.